International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

आधुनिक समय में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

Suman Khatri
Assistant Professor of Political Science
Saini co-Education college
Rohtak (Haryana)
Email : visu.sumankhatri@gmail.com

शोध–आलेख सार :

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद उल्लेखनीय परिवर्तन हुए थे, जिसके फलस्वरूप नए दृष्टिकोण, प्रतिमान, अबधारणाएँ तथा नए सिद्धांत तथा नए सिद्धांत इसकी विशेषताएँ बन गए थे। किन्तु लगभग दो दशक पहले जो परिवर्तन और घटक–चक्र विश्व में हुए, उन्होने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप को बिल्कुल ही बदल दिया। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के बदले हुए स्वरूप को समझने के लिए वह आवश्यक हो जाता है कि हम उन परिवर्तनों का उल्लेख करें, जिन्होने इसके स्वरूप को व्यापक रूप में प्रभावित किया है।

मुख्य–शब्द : द्वितीय विश्व–युद्ध, दृष्टिकोण, प्रतिमान, अबधारणाएँए अंतर्राष्ट्रीय राजनीति ।

भूमिका : सामान्य रूप से विभिन्न राष्ट्रों के मध्य जारी राजनीति को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संज्ञा जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत शक्ति के माध्यम से राज्य, अन्य राज्यों के साथ इस प्रकार के संबंध स्थापित करता है कि उसके अपने राष्ट्रीय हितों की अधिकाधिक पूर्ति हो सके। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के तीन तत्व होते हैं– राष्ट्रीय हित, शक्ति हित व संघर्ष। राष्ट्रीय हित अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का लक्ष्य होते हैं, संघर्ष इसकी प्रकृति होती है और शक्ति इसका साधन होती है। इन तीनों में संघर्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राज्यों के मध्य सहयोग भी देखने को मिलता है–' विशेष रूप से उन राज्यों के मध्य, जिसके हित परस्पर–विरोधी नहीं होते हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति राज्यों के मध्य जारी संघर्ष व सहयोग का विवरण बन जाती है।

शोध–प्रविधिः इस शोध–पत्र के लिए शोध सामग्री अधिकांश रूप में द्वितीयक स्रोतों से ग्रहण की गई हैं। इसमें ऐतिहासिक विश्लेषण व वर्णनात्मक दृष्टिकोण के साथ–साथ शोधकर्त्ता ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को भी स्थान दिया है। शोध सामग्री प्रसिद्ध पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं व समाचार पत्रों से प्राप्त की गई हैं।

राष्ट्र–राज्यों की परिवर्तित भूमिका– निःसंदेह समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था आज भी सम्प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र–राज्यों के मध्य जारी अंतक्रियाओं की व्यवस्था है, फिर भी पिछले कुछ समय से इन राष्ट्र–राज्यों की भूमिका बदल गई है। आज के इस अन्तनिर्भरता के युग में, प्रत्येक राष्ट्र–राज्य को, चाहे वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, अपने हितों एवं अपनी शक्ति को नियंत्रण में रखना पड़ता है। आज परमाणु शस्त्रों तथा अन्य विध्वसंकारी शस्त्रों के निर्माण के कारण प्रत्येक राष्ट्र अपनी जनता के जीवन एवं

सम्पत्ति की रक्षा करने में स्वयं को असमर्थ पाता है। परमाणु, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक अस्त्र–शस्त्र वाले त्रि–आयामी युद्ध ने इनको अपनी रक्षा करने में और भी अधिक असमर्थ बना दिया है।

विश्व जनमत, विश्व शांति तथा एक राष्ट्र के व्यक्ति से दूसरे राष्ट्र के व्यक्तियों से सीधे संबंधों ने राष्ट्र–राज्यों की सीमाओं को पार कर दिया है। इसलिए आज सभी राज्य विश्व स्तर एवं क्षेत्रीय स्तर पर आर्थिक संस्थाओं की स्थापना को आवश्यक मानते हैं और इसलिए इनके निर्देशों का पालन करते हैं। यहां तक कि आज राज्य अपने राष्ट्रीय हितों का निर्धारण भी अंतर्राष्ट्रवाद के संदर्भ में करने लगे हैं। विश्वस्तरीय मानव अधिकार आंदोलन, पर्यावरण की सुरक्षा तथा आतंकवाद जैसी संमस्याएँ राष्ट्र–राज्यों की नीतियों को प्रभावित कर रही हैं। इन सभी तत्वों ने अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राष्ट्र–राज्यों की भूमिका को सीमित कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप गैर–राज्य कर्ताओं की भूमिका में वृद्धि हुयी है। अतः आज कुछ विचारक राष्ट्र–राज्यों को समाप्त हुआ मानने लगे हैं। हम इनसे सहमत नहीं हैं, फिर भी इतना तो अवश्य ही सत्य है कि आज राष्ट्र–राज्यों की भूमिका में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है।

द्वि–ध्रुवीय व्यवस्था का अंत– द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद संपूर्ण विश्व दो परस्पर–विरोधी गुटों में बंट गया था, जिसमें एक गुट का नेतृत्व अमेरिका करता था और दूसरे गुट का पूर्व सोवियत संघ। इन दोनों महाशक्तियों ने अपनी स्थिति को सुदृढ करने के लिए अपने–अपने गुट गठित कर लिए थे। अमेरिका ने नाटो तथा सीटो तथा अन्य अनेक संधियों के माध्यम से अमेरिकी गुट का निर्माण कर लिया था। इन दोनों महाशक्तियों के बीच जारी शीत–युद्ध ने संपूर्ण विश्व को दो भागों में बांट दिया था, जिसके परिणामस्वरूप विश्व में द्वि–ध्रुवीय व्यवस्था कायम हो गई थी। किन्तु 20वीं शताब्दी के पांचवे दशक से ही इस व्यवस्था को चुनौती मिलने लगी थी और धीरे–धीरे एक प्रकार की बहुकेन्द्रीय व्यवस्था उत्पन्न होने लगी थी। किन्तु पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में इस द्वि–ध्रुवीय व्यवस्था में उस समय क्रांतिकारी परिवर्तन आया, जब संघ का विघटन हो गया और इसके स्थान पर 15 सम्प्रभुता–सम्पन्न राज्यों की उत्पति हुई। सोवियत संघ के विघटन के साथ ही वारसा पैक्ट भी समाप्त हो गयां यद्यपिइ स विघटन के बाद रूस सोवियत संघ का उतराधिकारी बना, किन्तु रूस की आर्थिक स्थिति खराब हो गई, जिसके परिणामस्वरूप वह एक कमजोर राष्ट्र ही बनकर रह गया। सोवियत संघ के विघटन ने अमेरिका के लिए विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र बनने का मार्ग प्रशस्त कर दिया और यह विश्व का सर्वोच्च शक्तिशाली राष्ट्र बन कर उभरा और पूर्व की ओर नाटो का विस्तार करने लगा।

संयुक्त राष्ट्र की भुमिका में वृद्धि– पिछले कुछ वर्षों से हमें संयुक्त राष्ट्र की भूमिका में वृद्धि होती नजर आती है। खाड़ी युद्ध संयुक्त राष्ट्र के आदेशों तथा प्रस्तावों के आधार पर ही लड़ा गया था। इसी प्रकार एक दशक तक चलने वाले इराक–इरान युद्ध की समाप्ति में भी इसकी उल्लेखनीय भूमिका रही। अफगानिस्तान समस्या के हल हेतु जेनेवा समझौते मे भी इसकी भूमिका रही। आज सोमलिया, रवांडा, बोस्निया, हर्जेगोविना एवं पूर्वी तैमूर जैसे लगभग 20 राष्ट्रों में संयुक्त राष्ट्र की शांति सेनाएं मौजूद हैं। शीत युद्ध के समाप्त होने पर संयुक्त राष्ट्र विश्व–शांति एवं सुरक्षा के विषय में अधिक जिम्मेदारी वाली भूमिका के योग्य हो गया है। लेकिन इस पर, विशेषकर इसकी सुरक्षा परिषद पर, अमेरिका का पिछलग्गू बन गया है और फ्रांस भी एक तरह से इसके पक्ष में ही है। फिर भी विश्व राजनीति में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका बढती जा रही है।

संयुक्त राष्ट्र के संगठन में परिवर्तन की मांग– संयुक्त राष्ट्र की उत्पति के बाद के विश्व में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की समाप्ति के परिणामस्वरूप विश्व में सम्पूर्ण

सम्प्रभुत्तासम्पन्न राज्यों को बहुमत प्राप्त है। आज संयुक्त राष्ट्र की सदस्य संख्या 192 हो चुकी है। इसकी महा सभा में नए राज्यों को बहुमत प्राप्त है, लेकिन इसकी सुरक्षा परिषद का ढांचा अभी भी पहला जैसा ही चला आ रहा है। आज भी इसकी सदस्य संख्या 15 ही है, जिसमें पांच स्थाई और दस अस्थायी सदस्य हैं। ये पांच स्थायी सदस्य हैं– अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रांस और चीन। इन पांचों सदस्यों में एक सदस्य एशिया से है, जबकि अफ्रिका और लेटिन का कोई राज्य इसका स्थायी सदस्य नहीं है। इसलिए आज सुरक्षा परिषद के विस्तार और इसके लोकतंत्रीकरण की मांग की जा रही है। आज भारत और जापान जैसे राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता प्राप्त करने का दावा कर रहे हैं, लेकिन अभी तक इनको इसकी स्थायी सदस्यता प्राप्त नहीं हुई है।

गैर–राज्य कर्ताओं की मांग में वृद्धि– अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में जो एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन हमें देखने को मिलता है, वह है गैर–राज्य कर्ताओं की संख्या में वृद्धि। ये गैर–राज्यकर्ता उन कार्यों को करते हैं, जो राज्यों के दायरे से बाहर होते हैं। ये राष्ट्र–राज्यों को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और यहां तक कि सैनिक संगठनों के अन्तः पाशन में बांधते जाते हैं। इन्होने राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता की गति को बढाया है और एक नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को जन्म दिया है। समकालीन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में गैर–राज्य तत्वों की बढती भूमिका के कारण ही इसके अध्ययन में पार–राष्ट्रीय–परिप्रेक्ष्य का प्रारम्भ हुआ है। ये गैर–राज्य कर्ता सामान्य रूप से विकासशील राष्ट्रों के ऊपर विकसित राष्ट्रों के नियंत्रण का साधन बनते जा रहे हैं, इसलिए आज विकासशील राष्ट्र इस प्रकार संगठनों के बढते खतरों से बचने का रास्ता ढूंढते नजर आ रहे हैं।

परमाणु शक्तियों का विस्तार– द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के समय अकेला अमेरिका ही ऐसा राष्ट्र था, जिसके पास परमाणु शस्त्र नहीं थे, किन्तु एक दशक के भीतर भूतपूर्व सोवियत संघ और ब्रिटेन परमाणु शस्त्र धारण करने वाले देश बन गए। 1960 के दशक में चीन और फ्रांस ने स्वयं को परमाणु शस्त्रों से सम्पन्न किया। इस प्रकार परमाणु शस्त्र धारक राज्यों की संख्या पांच हो गई, जिनका पी–5 नाम दिया गया। लेकिन जब इन राष्ट्र ने परमाणु अप्रसार संधि तथा व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि जैसी संधियों के सहारे अपनी परमाणु श्रेष्ठता को बनाए रखने, अपने परमाणु साम्राज्यवाद को स्थापित करने तथा निशस्त्रीकरण के बारे में कोई ठोस कदम न उठाने की नीति पर चलना प्रारम्भ किया, तो ऐसी स्थिति में भारत ने अपनी सुरक्षा आवश्यकताओं के मद्देनजर मई, 1998 में पांच परमाणु परीक्षण किए और स्वयं को परमाणु शक्तिसम्पन्न राष्ट्र घोषित कर दिया। इसके 15 दिन बाद पाकिस्तान ने भी परमाणु परीक्षण कर डाले। इसके परिणामस्वरूप आज परमाणु शस्त्र धारण करने वाले राष्ट्रों की संख्या बढकर 7 हो गई, यद्यपि अभी तक भी पी–5 देश भारत और पाकिस्तान को परमाणु सम्पन्न राष्ट्र नहीं मानते हैं।

परमाणु निशस्त्रीकरण– परमाणु शस्त्रों की उत्पति के बाद से ही परमाणु निशस्त्रीकरण की मांग एक जोरदार मांग बनकर उभरी है। परमाणु शस्त्र–विहीन राष्ट्र निशस्त्रीकरण की मांग का समर्थन कर रहे हैं। इसी तरह गुट–निरपेक्ष आंदोलन के देश इसका व्यापक रूप से समर्थन कर रहे हैं, किन्तु परमाणु शस्त्रधारक राष्ट्र इसके प्रति गंभीर नहीं हैं। 1997 तक ये राष्ट्र परमाणु शस्त्रों की दौड़ में शामिल रहे। ये राष्ट्र स्वयं तो परमाणु शस्त्रों के निर्माण में लगे हैं, लेकिन अन्य राष्ट्रों के परमाणु शस्त्र प्राप्त करने या विकसित करने से रोकते हैं। इसके लिए ये परमाणु अप्रसार संधि और व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि का सहारा ले रहे हैं। इन्होने परमाणु अप्रसार को एक उद्देश्य तो बनाया है, किन्तु स्वयं परमाणु शस्त्र रखने के नाम पर इनके प्रसार को जारी रखे हुए है। ये राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों पर इन संधियों पर हस्ताक्षर

करने के लिए दबाव डालते रहे हैं। सी. टी. बी. टी. को 150 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर करके स्वीकार कर लिया है, किन्तु 1999 में अमेरिकी सीनेट ने अमेरिका को इस पर हस्ताक्षर करने से रोक दिया। भारत ने अभी तक इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं, क्योंकि वह इसे भेदभावपूर्ण मानता है। भारत और कुछ अन्य देशों का कहना है कि जब तक इस संधि में परमाणु निशस्त्रीकरण का कोई ठोस कार्यक्रम दर्ज नहीं किया जाता है, तब तक यह अधूरी एवं असफल ही रहेगी।

उत्तर–दक्षिणी विरोध– निर्धन अविकसित राज्यों के प्रादुर्भाव, पूर्व साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथों इनका शोषण, विकसित राष्ट्र द्वारा इनकी नीतियों में हस्तक्षेप व इन पर नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास और इन राज्यों द्वारा इस नव–उपनिवेशवाद से मुक्ति पाने के प्रयासों ने विश्व को धनी और निर्धन राष्ट्रों की श्रेणियों में विभक्त कर दिया है। उतर के नाम से वे राष्ट्र जाने जाते हैं, जिनका कुल राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय अत्यधिक है और ये औद्योगिक एवं तकनीकी दृष्टि से विकसित देश हैं। इसके विपरीत, एशिया, अफ्रिका एवं लेटिन अमेरिका के वे राज्य दक्षिण के नाम से जाने जाते हैं, जिनकी कुल राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय आय बहुत ही कम है और इनमें औद्योगिक एवं तकनीकी विकास का स्तर निम्न है।

आज दक्षिण अर्थात् तीसरे विश्व के राष्ट्र नव–उपनिवेशवाद से छुटकारा पाने और विकास करने के लिए विश्व अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण पर बल दे रहे हैं, किन्तु उतरी राष्ट्र अपने हित में इसको बनाए रखना चाहते हैं। दक्षिणी राज्यों की इच्छा को ध्यान में रखते हुए ये इस व्यवस्था में सीमित परिवर्तन ही करना चाहते हैं। संरक्षणवादी व्यापार एवं आर्थिक नीतियों के सहारे वर्तमान दोषपूर्ण अर्थव्यवस्था का बनाए रखने के उतरी राज्यों के प्रयासों का दक्षिणी राज्य बराबर विरोध करते रहते हैं। इसके साथ ही ये विश्व बैंक अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी उन संस्थाओं का विरोध भी करते हैं, जिन पर उतर के धनी राज्यों का प्रभुत्व बना हुआ है। ये निर्धन राज्य उत्तर–दखिणी वार्ता चाहते हैं, जिससे की नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हो सके। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें कि धनी एवं निर्धन सभी राष्ट्रों के आर्थिक हित सुरक्षित होंगे, किन्तु उत्तरी राज्यों, विशेषकर अमेरिका द्वारा ऐसी किसी व्यवस्था को स्वीकार करने को लेकर उत्तर एवं दक्षिण में व्यापक मतभेद जारी है। इसलिए धनी राष्ट्रों ने जी–7 तथा विकासशील राष्ट्रों ने जी–15 नामक समूहों का निर्माण किया है। विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के बाद भी उत्तर–दक्षिण विवाद बना हुआ है।

अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में वृद्धि– आधुनिक समय की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की एक प्रमुख विशेषता है–उच्च राजनीति (सैनिक युद्ध कला समस्याएँ एवं संबंध) की अपेक्षा निम्न राजनीति का महत्पूर्ण स्थान ग्रहण करना। दूसरे शब्दों में, आज आर्थिक संबंधों के संचालन का कार्य, राजनीतिक संबंधों के संचालन के कार्य से अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। इसलिए आज राजनीतिक या भू–प्रदेश–संबंधी विवाद राष्ट्रों के मध्य आर्थिक सहयोग के मार्ग में रूकावट नहीं बनते हैं। वस्तुतः अब सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में होने वाले सहयोग को राजनीतिक विवाद को सुलझाने के लिए उपर्युक्त वातावरण तैयार करने वाला साधन माना जाता है। भारत और पाकिस्तान के बीच जम्मू–कश्मीर समस्या के समाधान को लेकर मतभेद चला आ रहा है, फिर भी दोनों देशों के मध्य सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सहयोग जारी है। इसी प्रकार का उदाहरण अमेंरिका एवं चीन तथा चीन एवं जापान के मध्य जारी आर्थिक सहयोग प्रस्तुत करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्निर्भरता में वृद्धि– पिछले कुछ समय से राष्ट्र–राज्यों के मध्य अन्तनिर्भरता में वृद्धि हुई है। आज धनी एवं विकसित राष्ट्र कच्चे माल के लिए विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों पर निर्भर होते जा रहे हैं। इतना ही नहीं, ये अपने औद्योगिक उत्पादन , कार्य–कुशल एवं प्रशिक्षित मानव शक्ति के लिए भी विकासशील राष्ट्रों पर निर्भर है। आज अमेरिका मे बिकने वाले तेल की कीमतें तेल उत्पादक राष्ट्रों के संगठन के निर्णय पर निर्भर होती है। धनी राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अपनी सर्वोच्च स्थिति बनाए रखने के लिए तृतीय जगत के राष्ट्रों की मुद्राओं में वांछित परिवर्तन कराते रहते हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रों की आर्थिक व्यवस्था में आयात–निर्यात महत्वपूर्ण निवेश बन गए हैं। राष्ट्रों के मध्य बढती हुई इस अन्तर्निर्भरता ने राष्ट्रों को एक–दूसरे के बहुत नजदीक ला दिया है। क्षेत्रीय झगड़ों, जातीय संघर्ष और आपसी बैर के बावजूद भी आज विश्व व्यवस्था एक सामुहिक व्यवस्था बन गई है। किन्तु निरंतर बढती हुई इस अन्तर्निर्भरता के बावजूद भी अविकसित एवं विकासशील राज्य अपने विकास के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर हैं। फिर भी, वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में राष्ट्रों के मध्य अन्तर्निर्भरता बढती जा रही है।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में जटिलता– आज साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी व्यवस्था पूरी तरह समाप्त हो गई है, जिसके परिणामस्वरूप अनेक राज्यों का जन्म हुआ है। 1950 का 60 राज्यों वाला विश्व आज 192 राज्यों वाले विश्व में बदल गया है। एशिया और अफ्रिका के नए राज्यों के उदय के साथ ही लेटिन अमेरिकी राज्यों में भी जागृति आयी है, जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का स्वरूप पूरी तरह बदल गया है और ये बहुत अधिक जटिल हो गए हैं। अनेक आर्थिक, भूमि संबंधी, जातीय एवं राजनीतिक विवादों ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को अस्थिर, विरोधाभासी तथा समस्यात्मक बना दिया है। तो भी इन राज्यों द्वारा किए गए सामूहिक प्रयासों एवं पारस्परिक सहयोग के कारण ये अपनी समस्याओं पर विजय पाने में कुछ सीमा तक सफल रहे हैं। आज एशिया व अफ्रिका के इन देशों का संयुक्त राष्ट्र की महा सभा में दबदबा बना हुआ है, जबकि शक्तिशाली विकसित राष्ट्र इसकी सुरक्षा परिषद पर हावी हैं। ये नवोदित राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं में अपना समुचित स्थान पाने के लिए संघर्षरत है। इससे भी अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में जटिलता आयी है।

जातीय विरोधों एवं हिंसा में वृद्धि– पिछले कुछ दशकों में विभिन्न राष्ट्रों में जातीय विरोधों तथा हिंसा की घटनाओं में वृद्धि हुई है। श्री लंका में तमिल समस्या ने उग्र जातीय विरोध एवं उग्रवादी गतिविधियों को जन्म दिया है। इसी तरह आरमीनिया तथा अजरबेरान में जातीय विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया है। जातीय विरोध के कारण यूगोस्लाविया के टूकड़े हो चुके हैं। इसी प्रकार आज अनेक अफ्रीकी तथा लेटीन राज्य जातीय हिंसा के शिकार हैं। सोमलिया, फिजी, पूर्वी तिमोर तथा रवांडा इसकी चपेट में है। इतना ही नहीं, तुर्की, अफगानिस्तान, चेचन्या, मध्य पूर्व तथा बाल्कन क्षेत्र जातीय हिंसा के शिकार बन चुके हैं। हमारा पड़ोसी राज्य नेपाल भी माओवादी गुटों की हिंसात्मक कार्यवाहीयों से जूझ रहा है। सद्दाम हुसौन के अपदस्थ होने के बाद इराक में जातीय हिंसा बुरी तरह भड़क उठी है। अनेक राष्ट्रों के मध्य जारी जातीय विरोध एवं हिंसा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित कर रही है।

शीत युद्ध की समाप्ति– द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने पर विश्व शीत युद्ध में उलझ गया था। अमेरिका और पूर्व सोवियत संघ इसमें तल्लीन रहे थे। शीत युद्ध का दौर 1970 तक जारी था, लेकिन 1970 के बाद इसमें शिथिलता आने लगी थी, जो कुछ अपवादों को छोड़कर निरंतर बढती चली गई। 1985 में ही अमेरिका एवं सोवियत संघ तक अनवरत तनाव–शैथिल्य में शामिल थे। इसलिए इन दोनों ने 1987 में आई. एन. एफ. संधि पर तथा 1990 में स्टार्ट संधि पर हस्ताक्षर किए। नब्बे के दशक के प्रारम्भ में सोवियत संघ के विघटन और तत्पश्चात पूर्वी यूरोप के देशों के इसके प्रभाव–क्षेत्र से बाहर होने के उपरांत ये राष्ट्र

पश्चिमी यूरोपीय देशों के बहुत नजदीक आ गए हैं। पश्चिमी और पूर्वी जर्मनी के एकीकरण से यूरोप में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। सोवियत संघ के अफगानिस्तान से बाहर होने पर अमेरिका के अफगानिस्तान के प्रति रवैये में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। इसके परिणामस्वरूप शीत युद्ध का स्थान तनाव–शेथिल्य ले लिया। शीत युद्ध को बढावा देने वाली गठबंधन की राजनीति, शस्त्रों की दौड़, परमाणु शस्त्रीकरण जैसे तत्वों की जगह शांति, सुरक्षा, विकास, निःशस्त्रीकरण तथा सहयोग ने ले ली है। आधुनिक समय में शीत युद्ध पूरी तरह समाप्त हो गया है और इसका स्थान वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा विकास के लिए सहयोग ने ले लिया है।

गुट–निरपेक्षता की क्रियाशीलता में कमी– पिछले कुछ वर्षों में कई ऐसी अंतर्राष्ट्रीय घटनाएँ घटी हैं, जिसने गुटनिरपेक्ष आंदोलन की भूमिका को सीमित कर दिया है। शीत युद्ध की समाप्ति, सोवियत संघ का विघटन, जर्मनी का एकीकरण, पूर्वी यूरोप में लोकतंत्र का प्रादुर्भाव, पूर्वी और पश्चिमी यूरोप के देशों के मध्य बढता सहयोग और सांझी मुद्रा का प्रारम्भ, वारसा समझौते की समाप्ति आदि ऐसी प्रमुख घटनाएँ हैं, जिन्होने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को एकदम बदल दिया है। ऐसी स्थिति में गुट–निरपेक्ष आंदोलन अप्रासंगिक होता नजर आता है। यूगोस्लाविया में हुई जातीय हिंसा तथा गृह–युद्ध के कारण यह आंदोलन और भी कमजोर पड़ गया है। अपनी सदस्य–संख्या में वृद्धि के बाद भी यह आंदोलन आज दिशा–हीन सा हो गया है, क्योंकि यह नवीन परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को ढाल नहीं पाया है।

वैश्वीकरण– वैश्वीकरण की अवधारणा निरंतर मान्यता प्राप्त करती जा रही है, जिसके अंतर्गत विभिन्न देशों के बाजारों तथा आर्थिक व्यवस्थाओं में खुले संबंध स्थापित किए जा रहे हैं। आज अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण, आपसी सहयोग और मुक्त व्यापार व्यवस्था के कारण संपूर्ण विश्व एक परिवार में परिवर्तित होता प्रतीत हो रहा है। यद्यपि कुछ राष्ट्र और अनेक गैर–सरकारी संगठन वैश्वीकरण की इस अवधारणा की आलोचना और विरोध कर रहे हैं, तो भी यह आज के युग की एक महती आवश्यकता बन गया है। इसलिए राज्य इस प्रक्रिया में अपना योगदान दे रहे हैं।

क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण की प्रवृत्ति– पश्चिमी यूरोप में आर्थिक एकता का सफल संचालन दूसरे राष्ट्रों के लिए प्रेरणा स्त्रोत रहा है। यूरोपीय साझा बाजार तथा अन्य यूरोपीय समुदायों द्वारा पश्चिमी यूरोप के राज्यों ने न केवल 1914 से 1945 तक हुए अपने घाटे को पूरा किया है, बल्कि अपना औद्योगिक एवं तकनीकी विकास भी किया है। इसी सफलता ने इन्हे साझी मुद्रा अपनाने के लिए प्रेरित किया है। जनवरी, 1992 में यूरोपीय संध के सदस्यों ने आर्थिक एवं राजनीतिक एकता के लिए एक संघ के रूप में इकट्ठा होने का निर्णय लिया। यूरोपीय संघ विश्व में एक शक्तिशाली गैर–राज्य कर्ता के रूप में उभरा है और यह अमेरिकी चुनौतियों का सामना कर सकता है। इसकी सफलता को देखते हुए दूसरे राष्ट्रों ने भी इसका अनुसरण किया है, जिसके फलस्वरूप इसी तरह के अनेक संघों का प्रार्दुभाव हुआ है। पश्चिमी एशिया तथा केन्द्रीय एशिया के नौ मुस्लिम राष्ट्रों ने आर्थिक सहयोग संगठन का गठन किया है। इसी प्रकार दक्षिणी पूर्वी एशिया के राष्ट्रों ने आसियान तथा सार्क और तेल का निर्यात करने वाले राष्ट्रों ने ओपेक जैसे संघ बना डाले हैं। इसी तरह तथा विकासशील देशों का अपना अलग संगठन जी–15 हैं।

आतंकवाद का बढता खतरा– आज आतंकवाद अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सामने एक प्रमुख चुनौती के रूप में उभर आया है। पिछले दो दशकों से अल कायदा जैसे कई अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादी संगठन अपने संकीर्ण जातीय एवं धार्मिक हितों की पूर्ति के लिए हिंसा का सहारा लिए हुए हैं। 11 सितम्बर, 2001 को अमेरिका के दो प्रमुख नगरों– न्यूयार्क और वाशिंगटन–पर आत्मघाती हमले हुए, जिनमें विश्व व्यापार केंद्र

की दो बहुमंजली इमारतों को ध्वस्त कर दिया गयां इसी तरह पेण्टागन की इमारत को भी भारी हानि पहुंचाई गई। ठीक इसी तरह 13 दिसम्बर, 2001 में भारत के संसद भवन पर आतंकवादी हमला किया गया। श्रीलंका में तमिल चिते आतंकवाद का सहारा लेते रहे। सद्दाम को उपदस्थ किए जाने के बाद इराक में आतंकवादी हमले हो रहे हैं। यहां तक की पाकिस्तान में भी आतंकवाद सिर उठाए खड़ा है। आज आतंकवाद एक ऐसी समस्या बन चुकी है, जिसको समाप्त करने के लिए प्रयास किए जाने आवश्यक है।

निष्कर्ष– स्पष्ट है कि पिछले दशकों में विश्व में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं, जिनमें कुछ लाभदायक परिवर्तन हैं, तो कुछ हानिकारक भी। इन परिवर्तन ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित किया है, जिसके फलस्वरूप इसके स्वरूप में गुणात्मक अन्तर देखने को मिला है। निःसंदेह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के नए रूझान इसके भावी स्वरूप को निर्धारित करने वाले सिद्ध होंगे।

1 दिनेश चन्द्र पाण्डे, द्वि–ध्रुवीयता में गुटनिरपेक्षता, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1978, पृ० 210.
2 पी.एस. जयराम, इण्डियाज नेश्नल सिक्योरिटी एण्ड फॉरन पॉलिसी, ए.बी.सी. पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1987, पृ० 83
3 आर.एस. पाण्डेय, भारत के लिए हिन्द महासागर की सामरिक चुनौतियाँ– एक मूल्याकंन प्रतियोगिता दपर्ण, मई 2007, पृ० 1808.
4 यू.आर.घई एव ंके.के. घई इण्टरनेश्नल पॉलिटिक्स, न्यू एकेडेमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालन्धर, 2010, पृ० 292.
5 आर.एस. पाण्डेय, भारत के लिए हिन्द महासागर की सामरिक चुनौतियाँ– एक मूल्याकंन, प्रतियोगिता दर्पण, नई दिल्ली, मई 2007, पृ० 1808.
6 वही, पृ0 1808–09..
7 आर. एस यादव भारत की विदेशनीति : एक विश्लेषण, किताब महल, इलाहबाद, 2002, पृ 73.
8 आर.एस. पाण्डेय, भारत के लिए हिन्द महासागर की सामरिक चुनौतियाँ– एक मूल्याकंन, प्रतियोगिता दर्पण, नई दिल्ली, मई 2007, पृ० 1809.
9 दीपक कोहली, जैविक हथियारों की घातकता एवं निवारण, प्रतियोगिता दर्पण, नई दिल्ली, जून 2008, पृ0 2000.
10 पी.एस. जयरामू, इण्डियाज नेश्नल सिक्योरिटी एण्ड फॉरेन पॉलिसी, पूर्वोदृत पृ० 90.
11 दीपक कोहली, जैविक हथियारों की घातकता एवं निवारण, प्रतियोगिता दर्पण, नई दिल्ली, जून 2008, पृ0 95.
12 पी.एस. जयरामू, इण्डियाज नेश्नल सिक्योरिटी एण्ड फॉरेन पॉलिसी, पूर्वोदृत, पृ० 90.
13 पन्त, पुष्पेश, ''21वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'', मैग्राहिल एजुकेशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, 2014
14 यादव आर० एस०, ''भारत की विदेश नीति'', पियर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2013

15 कुमार संजय, ''21वीं शताब्दी में भारत की सुरक्षा चुनौतियाँ'', महाबीर एण्ड सन्स पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, 2007
16 वाजपेयी, अरूणादेय, ''समकालीन विश्व एवं भारत प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ, पियर्सन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
17 फडिया बी० एल०, ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति'', साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
18 गर्ग सुषमा, ''अर्न्राष्ट्रीय राजनीति'', अग्रवाल पब्लिकेशनस, आगरा, 2014